मोक्ष

डॉ. प्रियंका सोनकर
मो. 9582692523

हॉस्पिटल के शांत, सफेद गलियारे में, तीनों भाई जड़वत खड़े थे। डॉक्टर की आवाज उनके कानों में गूँज रही थी, 'इस वक्त कुछ भी कहा नहीं जा सकता। मैटर थोड़ा सीरियस है। सही इलाज हुआ तो बचाया जा सकता है।'

डॉक्टर ने तेजी से एक पर्ची पर दवाइयाँ लिखीं, उसे भाइयों की ओर बढ़ाया और लगभग आदेशात्मक लहजे में कहा, 'जाइए! शीघ्र ही ये दवा लेते आइए।'

एक भाई ने पर्ची लपक कर दूसरे को थमाई, आँखों में डर और लाचारी थी। 'जल्दी जाओ,' फुसफुसाहट हुई।

माथे पर चिंता की गहरी लकीरें लिए तीनों भाई अपने बेड पर बेसुध पड़ी माँ के पास पहुँचे। उनका शरीर स्थिर था, मानो वातावरण में सब कुछ थम-सा गया हो। अचानक, छोटे भाई की आवाज वातावरण की चुप्पी को चीर गई।

'भैया, अब तो मेरे पास पैसे भी नहीं हैं।'

बड़े भाई ने दुखभरी निगाहों से माँ को देखा। फिर माँ भी तो अंतिम साँस गिन रही है। शायद ही बचें।' उसकी आवाज में गहरी निराशा थी। तीसरे ने सहमति में सिर हिलाया, 'पैसा लगाकर भी क्या होगा? मैं तो यही कहूँगा कि आप भी न लगाओ।'

पूरी सुबह दुविधा और गहन चिंतन-मनन में बीत गई। जब शाम ढली और भाई किसी तरह हॉस्पिटल पहुँचे, तो उनकी उम्मीदों पर वज्रपात हुआ।

डॉक्टर ने बिना किसी भाव के कहा, 'आपकी माँ नहीं बची।'

मानो बिजली का झटका लगा हो। चीख-पुकार और रोना-धोना शुरू हो गया। 'डॉक्टर, ऐसे कैसे हो गया? माँ की तो साँसें चल रही थीं, फिर...?'

डॉक्टर ने तीनों भाइयों को देखा। उनके चेहरे पर कोई भावना नहीं थी। उन्होंने कुछ बोलना उचित नहीं समझा। बस इतना कहा, 'आप अपनी माँ का शव ले जा सकते हैं।'

कुछ ही घंटों में, घर का माहौल पूरी तरह बदल चुका था। नाते-रिश्तेदारों को संदेश पहुँच गया था। घर में लोगों का हुजूम जुटने लगा था। दूर-दराज के संबंधियों को भी खबर मिल गई थी।

कर्मकांड के लिए पंडित जी को बुलाया गया। माथे पर तिलक, सफेद कुर्ता पहने, धोती का आखिरी छोर हाथों में पकड़े हुए पंडित जी ने घर में प्रवेश किया। उन्होंने घर के बीचों बीच अपना आसन लगाया, भाइयों का ध्यान अपनी ओर खींचा और बैठ गए।

पंडित जी ने कर्मकांड के लिए जरूरी सामग्रियों की एक लंबी-चौड़ी सूची बनाकर भाइयों के हाथ में थमा दी और जल्दी लाने को कहा।

एक कोने में लोग 'टिटी' (अर्थी) बांधने लगे थे। दूसरे कोने में, महिलाएँ बिलखती हुई शव को नहलाने-धुलाने के क्रियाकर्म में लगी थीं। बेटियों का रुदन इतना तेज हो गया था कि देखने वालों की भीड़ भी उस दुख को महसूस कर रही थी।

सामग्री आते ही, एक भाई ने पंडित जी को सौंपते हुए कहा, 'अब आप काम शुरू करें।'

पंडित जी ने गंभीर स्वर में मंत्र पढ़ना शुरू किया और घोषणा की, 'पिंडदान समुचित विधि-विधान से होगा। नहीं तो माता जी को मोक्ष नहीं मिलेगा।'

भाई तुरंत तैयार हो गए। 'हाँ पंडित जी, आप शुरू तो करें।'

पंडित जी ने अपनी आवाज ऊँची की, 'पिंडदान को विधिवत किए जाने पर ही माँ की आत्मा को शांति मिलेगी। आप लोग भी प्रेतात्मा से मुक्त रहेंगे।'

माँ की आत्मा की शांति और मोक्ष प्राप्ति की बात सुनकर, भाइयों का ध्यान सचेत हो गया। उन्होंने पूरे ध्यान से पंडित जी के निर्देशों का पालन किया। पंडित जी ने मंत्रों का उच्चारण करते हुए कहा, 'जो मृत है, उससे अपने रिश्ते को जोड़ते हुए, उनके मोक्ष और अपने जीवन में प्रेतात्माओं से शांति का ध्यान धरते हुए, यहाँ पिंड पर अक्षत के साथ कुछ पैसों को भी अर्पित करें।'

पिंडों की संख्या तीन थी। तीनों भाइयों ने अलग-अलग, तीनों पिंडों पर अक्षत के साथ श्रद्धापूर्वक पैसे समर्पित किए।

इसके बाद, बारी आई अन्य भाइयों और सगे-संबंधियों की। एक ही गोत्र के संबंधियों ने, 'माँ को मोक्ष मिले!' कहते हुए दाह-संस्कार करने वाले भाई के हाथ में पैसा डालना शुरू कर दिया।

देखते ही देखते, भाई का हाथ पैसों से भर गया। इतने नोट थे कि कुछ रुपए फिसलकर जमीन पर गिरने लगे।

पंडित जी की लालची निगाहें पैसों पर टिकी थीं। मंत्र उच्चारण करते हुए भी, वह बार-बार बोल रहे थे, 'और लोग आते जाइए! माँ को मोक्ष मिले और घर में शांति स्थापित हो! सभी दान करें!'

तीनों भाइयों ने जितना संभव हो सका, श्रद्धा के नाम पर पैसे दिए।

घर का आँगन रोने, भागदौड़ और पैसों की खनक से भर गया था।

और बीचों-बीच-माँ का निस्तब्ध, शांत शरीर पड़ा था।

उनके पास अब कोई सांस नहीं थी,

बस उनके मोक्ष की कीमत तय की जा रही थी।❑

पृष्ठ सं. 107 का शेष भाग

है। अब मैं अकेला नहीं था। मेरे शब्दों में मेरी जाति नहीं, मेरा सच बोल रहा था। और सच कभी अकेला नहीं होता। मैं समझ चुका था—यह लड़ाई मेरे अपमान की भरपाई नहीं, एक पूरी पीढ़ी की इंसानियत की माँग है। यह उन सबकी लड़ाई थी जिनके नाम के आगे सन्नाटा लगा दिया गया है। जिनकी पहचान कागजों में तो दर्ज है, लेकिन समाज में नहीं। जिनकी मेहनत दिखती है, लेकिन बराबरी नहीं। हमने संगठन बनाया। डर से नहीं, जरूरत से। हमने नीला झंडा उठाया, किसी रंग के खिलाफ नहीं, बराबरी के पक्ष में। पहली बार सड़कें हमारी आवाज से गूँजीं। नारे लगे, 'हम भी इंसान हैं!'

'हम भी बराबर हैं!'

ये नारे हवा में नहीं, सीधे सत्ता की दीवारों से टकराए। और जैसे हर बार होता है—जवाब में लाठियाँ चलीं। वही पुरानी भाषा। वही पुराना जोर, लेकिन इस बार लाठी की चोट दिल तक नहीं पहुँची। क्योंकि डर से बड़ी चीज, चेतना जाग चुकी थी।

अब हमें पता था कि गिरना हार नहीं है, और चुप रहना सबसे बड़ी हार है। आज जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो समझ आता है—यह लड़ाई सिर्फ अधिकार की नहीं थी। यह पहचान की थी। अपने नाम को पूरा करने की लड़ाई। अपने वजूद को आधे में कटने से बचाने की लड़ाई। आज भी जब कोई मेरा नाम पूछता है, और मैं पूरा नाम बताता हूँ—तो वही पुराना सन्नाटा अब भी आता है, लेकिन फर्क इतना है—अब वह सन्नाटा मुझे नहीं डराता। अब वह सन्नाटा मेरे सवालों से डरता है, क्योंकि अब मैं जानता हूँ—नाम के आगे लगा सन्नाटा हमारी चुप्पी से नहीं, हमारी आवाज से टूटता है। ❑